

# मनुष्य के प्रति आदिम लगाव की कहानियां

अजय वर्मा

यथार्थ का वर्णन कथाकार के लिए जरूरी है मगर एक अच्छी कहानी के लिए इसका कोई तयशुदा फॉर्मूला नहीं होता। संवेदनशील रचनाकार अक्सर यथार्थ का अतिक्रमण करता है। यह अतिक्रमण यथार्थ का विरोधी नहीं होता बशर्ते कि रचनाकार की दृष्टि जीवन की गहराई में उतर सकती हो। काफ़का की 'फैसला' और 'कायांतरण' जैसी कहानियां चर्चित हुई थीं तो लुकाच ने उन्हें यथार्थवाद का विरोधी समझा था। जब 1956 में हंगरी में विद्रोह का दमन हुआ और लुकाच को वहां सोवियत समर्थित सरकार ने जेल में डाल दिया तब उन्होंने कहा कि काफ़का सचमुच यथार्थवादी था। तात्पर्य कि जीवन की जटिल स्थितियों के दबाव में रचनाकार यथार्थ को रचना में कैसे लाता है इसका कोई निश्चित फॉर्मूला नहीं है। यथार्थ की धारणा के अतिक्रमण का अर्थ यथार्थ से भागना नहीं है, फॉर्मूले से मुक्त होना है और यथार्थ की धारणा से मुक्त होकर ही रचनाकार जीवन को करीब से देख सकता है। जिन दो कथाकारों— मनोज कुमार पाण्डेय और विमलचंद पाण्डेय के कहानी संकलनों पर विचार करना हमारा अभीष्ट है, उनके संदर्भ में उपर्युक्त टिप्पणी का महत्व है। दोनों कथाकारों की कहानियां कथ्य, भाषा और चरित्र सभी बिन्दुओं पर पूर्व निर्मित धारणाओं को जगह जगह तोड़ती चलती हैं। दोनों नये कथाकार हैं और दोनों का कहानी कहने का ढंग भिन्न है, मनोज स्मृतियों की गहन छानबीन में वर्तमान के संकटों को रूप देते हैं तो विमल दृश्य रचने में और चरित्र को खंगालने में अपनी तीक्ष्ण दृष्टि का परिचय देते हैं। पर अंततः दोनों कथाकारों की कहानियों में एक ही बेचैनी दिखलाई पड़ती है, आज के जीवन की विसंगतियों के बीच मनुष्य के लिए स्पेस की तलाश।

मनोज कुमार पाण्डेय के कहानी संकलन शहत्त की अधिसंख्य कहानियां पीछे छोड़ आयी वचपन की स्मृतियों से भरी हुई हैं। ये स्मृतियां अतीत के प्रति मोह का संकेत देने के बजाय लेखक के आत्मसंघर्ष और बाह्यसंघर्ष के बीच एक अनिवार्य समन्वय बनाती हैं। वस्तुतः मनोज स्मृतियों के प्रति मोहासक्त नहीं हैं, वे स्मृतियों को रिसायकल करते हैं, वर्तमान के यथार्थ और जीवन स्थितियों के रूप में। यह रिसायक्लिंग एकायामी नहीं है, इसमें बिडम्बनाएं हैं और इसी के कारण कथानक का प्रचलित ढांचा ये तोड़ते हैं। ध्यान रहे कि कथानक का रूढ़िग्रस्त ढांचा टूटता है, कथानक का विलोप नहीं होता। कथानक विवरणों के रूप में यहां बनता है और विवरणों में विडम्बनाएं हैं। जीवन स्थितियों के बीच जो विडम्बनात्मक सम्बंध होते हैं वे ही यथार्थ को सही रूप में प्रस्तुत करते हैं और इस प्रकार की कहानियों का सच पूर्व निर्धारित नहीं होता। आश्चर्य नहीं कि पारिवारिक सम्बंधों के यथार्थ में जो विडम्बनाएं होती हैं, उन्हें मनोज पूरी शिद्दत से सामने लाते हैं। उनकी स्मृतियों में जो दुनिया बसी है वह अर्धसामंती और रूढ़िग्रस्त मान्यताओं वाली दुनिया है। इस संकलन की दस कहानियों में से चार कहानियां ऐसी हैं जिनमें पिता का चित्र पूरे परिवार के सम्बंधगत ढांचे की जटिलता को प्रस्तुत करता है और पिता

की एक आतंककारी छवि उभरती है। सीधे तौर पर पिता एक दहशत पैदा करने वाले शख्स के रूप में नजर आते हैं, मगर विवरणों से कथानक जैसे जैसे खुलता जाता है, वैसे वैसे यह साफ होता जाता है कि पिता एक रूढ़िग्रस्त पारिवारिक व्यवस्था के पुर्ज हैं जो पुत्र के प्रति अपने आदिम राग को दबा कर रखने के लिए अभिशप्त हैं। 'बेहया' कहानी में आजी कहानी के 'मैं' को सिर्फ इसलिए बेरहमी से पीटती रहती हैं कि इसमें उन्हें परिवार पर अपने प्रभुत्व का बोध होता है। मनोज विमर्शों को अपनी कहानियों में सायास नहीं लाते पर वे स्मृतियों के ब्यौरे प्रस्तुत करते हुए सम्बंधों की जटिलता में प्रवेश करते हैं और तब विमर्श तार्किक और वास्तविक रूप में सामने आ जाते हैं। संयुक्त पितृसत्तात्मक समाज में बहू के रूप में स्त्री दमित और उत्पीड़ित होती है पर उम्र के अंतिम पड़ाव पर अक्सर (अपवादों को छोड़ दें) वह दमन और उत्पीड़न का सक्रिय एजेण्ट बन जाती है। इस दौर में उसकी कुंठाएं उसे निर्मम बना देती हैं और परिवार में अपनी उपस्थिति का अहसास कराने के लिए वह क्रूरतम तरीके अपना लेती है। 'बेहया' की आजी को इसी रूप में देखना चाहिए।

मनोज की कहानियों में वस्तु वर्णन भाव वर्णन के साथ इस प्रकार समन्वित हो जाता है कि दोनों को अलग करना सम्भव नहीं रह जाता। 'बेहया' में जो गड़ही है, वह सिर्फ वातावरण का चित्र नहीं है, वह लेखक की चेतना का हिस्सा है, वह गड़ही उस रूढ़िग्रस्त और अर्थ सामंती वातावरण का एक प्रतीक भी है जिसमें दुखद और सुखद दोनों तरह की स्मृतियां और अनुभव हैं जैसे शानी के उपन्यास 'काला जल' का सेंवार, कीचड़ आदि से भरा, बजबजाता तलैया मुस्लिम जीवन के दमघोंटू वातावरण को व्यक्त करता है। मनोज जब थीम को उठाते हैं तो उसमें अनेक कथासूत्र निकलते हैं और वे सब समन्वित रूप में जिस बिन्दु पर एकत्र होते हैं, वही इनकी कहानी का सच होता है। ऊपर वर्णित कहानी में आजी की निर्ममता में कहानी का केन्द्र नहीं है, केन्द्र उस जीवन के पूरे समन्वित वर्णन में है जिसमें उसका बचपन गुजरा है, जिसमें आजी हैं, पिता हैं, स्कूल के मास्टर हैं और मां है और इसके ब्यौरों के बीच पिता का वह प्यार है जो कहानी के अंत में फूट पड़ता है, इतने मार्मिक रूप में कि भाषा मौन हो जाती है। संग्रह की दूसरी कहानी 'चंदू भाई नाटक करते हैं' में पिता का वर्णन और ज्यादा भयावह है, इतना कि वे कहानी के नायक चंदू भाई यानी अपने पुत्र को बंदूक लेकर मारने दौड़ते हैं, मगर कहानी का सच यह नहीं है, कहानी का सच भ्रष्ट तंत्र की वह गलाजत है जो युवा पीढ़ी की आकांक्षाओं और प्रतिभा का दमन करती है। इस दमन के पीछे घोर व्यावसायिक तंत्र है जिसमें चंदू भाई के पुलिसिया पिता जैसे लोग भी शामिल हैं। चंदू भाई अपने बेहतरीन प्रदर्शन के बावजूद राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय की प्रवेश परीक्षा में असफल हो गये। यह कहानी का त्रासद अंत है और यही आज के यथार्थ का असली रूप है।

लगभग यही कथ्य इनकी बहुचर्चित कहानी 'खाल' का है। यह कहानी बहुत ही महत्वपूर्ण है, इसलिए नहीं कि इसमें एक कलाकार बुद्धिजीवी की निर्ममता और घोर व्यक्तिवादिता अभिव्यक्त हुई है, यह इसलिए महत्वपूर्ण है कि इसमें एक चरित्र कई कई भूमिकाओं में दिखलाई पड़ता है। इसके नायक मनोहर दा उस पूरे पाखंडी, धर्मांध और बाजारवादी दौर में बौद्धिक छद्म को सामने लाने का कारण बनते हैं जो आज की वास्तविकता है मगर उसकी गलाजत सीधे नहीं दिखलाई पड़ती। विडम्बनाओं का जितना सधा प्रयोग लेखक ने इसमें किया है, असंगतियों के बीच रचना जिस प्रकार अपना तर्क इस कहानी में ढूंढती है, वह अन्य किसी कहानी के मुकाबले में विरल है। प्रसिद्ध कलाकार मनोहर दा का मोबाईल गुम हो जाता है तो वे थाने में रिपोर्ट लिखाने पहुंचते हैं। यहां का दृश्य वर्णन बहुत ही संकेतों से भरा है और ये कथासूत्र कथानक के मुख्य अंतर्विरोध से जुड़ते हैं। मुंशी की कुर्सी के पीछे श्रीराम की धनुष ताने आक्रामक मूर्ति है और पृष्ठभूमि में भगवा ध्वज से लैस प्रस्तावित मंदिर का ढांचा और मुंशी के सामने खड़े हैं मनोहर दा जिनका शहर में बड़े बड़े लोगों से ताल्लुक है। तस्वीर से जो धर्मांधता टपकती है वह मुंशी की बातचीत से प्रमाणित हो जाती है। सामने मनोहर दा प्रखर

बुद्धिजीवी के रूप में खड़े हैं और दृश्य में कंट्रास्ट उत्पन्न होता है हाजत में बंद लड़के के रिरियाने से। उसका रिरियाना और मनोहर दा का गर्वमिश्रित धैर्य, सहजता दृश्य में कंट्रास्ट उत्पन्न करती है। मुंशी यहां धर्मांध, काइयां, मूर्ख और उजड़ड पुलिसिये के रूप में दिखलायी देता है जबकि मनोहर दा उदात्त और भव्य रूप में। हाजत में बंद लड़का वह आम हिन्दुस्तानी मनुष्य है जो मनोहर दा जैसे कलाकार, बुद्धिजीवी के चिन्तन का केन्द्र है। प्रत्यक्ष रूप से उस लड़के की उपस्थिति की कथा में कोई जरूरत नहीं लगती, पर मनोहर दा की गर्वीली विनम्रता के समकक्ष उस लड़के की दयनीयता का चित्रण करके लेखक ने वर्गीय खाई की ओर संकेत किया है और लड़का ही आगे चल कर हसन रिक्शा वाले में बदल जाता है।

कहानी के इस भाग में मनोहर दा मुंशी की तुलना में भव्य और उदात्त बुद्धिजीवी नजर आते हैं, पर जब मोबाईल का पता लग जाता है और वे कथा के वाचक के साथ उस रिक्शा वाले हसन के घर उसे हासिल करने जाते हैं तो एक क्रूर, निर्मम और घनघोर स्वार्थी व्यक्ति में परिणत हो जाते हैं। खाल पर जो कलाकार बुद्धिजीवी का रंग चढ़ा था वह उतर जाता है और मनोहर दा कलाकार की भूमिका से उस मुंशी की भूमिका में आ जाते हैं। वे वाचक से कहते हैं कि देखो मैं उस हसन मुसल्ले को कैसे सबक सिखाता हूं और वे वाचक को याद दिलाते हैं मुंशी की कुर्सी के पीछे लगी राम की आक्रामक तस्वीर और पृष्ठभूमि में भगवा ध्वज वाले प्रस्तावित मंदिर के ढांचे की। सारा मामला स्पष्ट हो जाता है। लेखक साम्प्रदायिकता के विमर्श की बात नहीं करता, पर इस विमर्श में तथाकथित बुद्धिजीवियों की क्या भूमिका है, यह स्पष्ट हो जाती है, यह भी कि पढ़े लिखे मध्यवर्ग का आंतरिक चरित्र कैसा है। जहां तक मुंशी और कान पर जनेऊ चढ़ाये सिपाही का जिक्र पूर्व में कथाकार करता है, उन सबका चरित्र एक बिन्दु पर आ जाता है। यहां मनोहर दा का चरित्र मुंशी के चरित्र में बदल जाता है। यह विडम्बना के प्रयोग का बहुत ही सधा अंदाज है। यहां यह भी संकेत मिल जाता है कि साम्प्रदायिक दंगों में भारतीय पुलिस की क्या भूमिका होती है। विभूतिनारायण राय ने दंगों में पुलिस की भूमिका पर जो किताब लिखी है, उसका महत्व यहां स्वाभाविक रूप से नजर आने लगता है।

‘यात्रा’ शीर्षक कहानी में कला साहित्य के नाम पर पाखंड का वर्णन प्रत्यक्ष रूप से हुआ है, लेकिन मुख्य रूप से इसका कथानक नयी पीढ़ी की तकलीफों, व्यवस्था में मिसफिट होने का है। वित्तीय और व्यावसायिक पूंजी के वर्चस्व के इस दौर में नौजवान किस तरह नष्ट होने के लिए अभिशप्त हैं इसका सटीक और प्रभावशाली वर्णन इस कहानी में है। लेकिन कहानी के बाद वाले हिस्से में मनोज फैंटेसी रचने के आकर्षण में जादुई यथार्थवाद की ओर चले जाते हैं और यहां मारक्वेज का प्रभाव आंखों में गड़ने लगता है। फैंटेसी के प्रयोग की खूबियां हैं तो अपने खतरे भी। इस फैंटेसी का बड़ा भाग मारक्वेज के उपन्यास ‘एकांत के सौ वर्ष’ के एक हिस्से से मिलता है तो कहीं कहीं मो. मंशा याद की ‘तमाशा’ कहानी के दृश्यों, संवादों से। मनोज जहां मिथकों, स्मृतियों के द्वारा फैंटेसी रचते हैं, वहां वे अपना मंतव्य प्रभावशाली ढंग से व्यक्त कर देते हैं, यहां वे कमजोर पड़ गये हैं।

‘पत्नी का चेहरा’ आज के भाग दौड़ और आभासी सुख की तलाश में भटके लोगों के बीच उत्पन्न सम्बंधहीनता की चिन्ता, टूट रहे सम्बंधों को जोड़ लेने की कोशिश की कहानी है। ‘लकड़ी का सांप’ आज के समय की उच्छृंखलता को व्यक्त करती है। ‘एक किशोर सफर में’ कहानी परिवेश, इतिहासबोध और इर्द गिर्द की छोटी छोटी चीजों के प्रति लगाव तथा एक संवेदनशील युवा के आत्मसंघर्ष, जीवन स्थितियों को लेकर उत्पन्न होने वाली धारणाओं, बेचैनियों, छोटी छोटी खुशियों और छोटे छोटे सुखों को व्यक्त करने वाली कहानी है। रूप की दृष्टि से यह डायरीनुमा लगती है, पर वास्तव में इसे न तो डायरी कहा जा सकता है न कथा रिपोर्टाज। लेखक उन्मुक्त तरीके से अपने जीवन, परिवेश, इतिहास, मार्मिक दृश्यों के ब्यौरे प्रस्तुत करता हुआ चलता है। कहीं कहीं यात्रा वृत्तांत के शिल्प का भी प्रयोग हुआ है। वस्तुतः यह विविध कथा प्रविधियों और भावचित्रों का एक कोलाज है। कहानी

कहने की आख्यानपरक शैली में मनोज एक नया प्रयोग करते हैं, न सिर्फ शिल्प की दृष्टि से, बल्कि विभिन्न भाव छवियों को वे एक समन्वित संवेदनात्मक केन्द्र पर लाते हैं।

‘एक कप कॉफी’ आज की युवा पीढ़ी के सपनों के ठस होने की कहानी है। यह पांच दोस्तों की कहानी है जिसमें चार लड़कियां और एक लड़का है, यानी कहानी का मैं। इन सबने ऊंची जिन्दगी के सपने देखे थे, पैसा, शोहरत, हर तरह से सुखी जिन्दगी का यूटोपिया इनके जेहन में था। पर जैसे जैसे आज के कठोर यथार्थ से इनका सामना हुआ, यूटोपिया भंग होने लगा और जीवन बेहद कुरूप रूप में सामने आने लगा। यह युवा पीढ़ी अस्सी के दशक की कहानियों से सामने आयी युवा पीढ़ी का विस्तार है।

आज की विद्वप वास्तविकताओं के बीच मनुष्य के संघर्ष, आशा निराशा, हताशा और छोटी छोटी खुशियों के क्षण की तलाश के लिए भटकती पीढ़ी को मनोज सामने लाते हैं। यही तलाश संकलन की अंतिम और प्रतिनिधि कहानी ‘सोने का सुअर’ में है। अभावग्रस्त परिवार के बच्चे में जो उमंगें हैं, कुतूहल और अच्छी जिन्दगी की ललक है, वह ‘सोने के सुअर’ की मिथकीय लोककथात्मक सपने की तरह भंग हो जाती है। इसकी कथावस्तु नायक चंदू के अपने पैतृक गांव से नानी के गांव तक फैली है और नानी के गांव से चंदू के स्कूल तक जाने में अर्द्धशहरी कस्बाई जीवन के ब्योरे चंदू के कुतूहल, जिज्ञासा और छोटी छोटी उत्सुकताओं को रूपायित करते हैं। पर चंदू जब नानी के घर जाते हैं तो वहां संयुक्त परिवार के कटु यथार्थ से उनका सामना होता है। मामियों के ताने और नाना तथा मामुओं के रूखे व्यवहार, ममेरे भाइयों की कटुता का जो असर चंदू के मन पर होता है उसे सिर्फ बच्चे के मनोजगत का विवरण नहीं कहा जा सकता। यह दो भिन्न आर्थिक स्थितियों वाले परिवार की मानसिकता का टकराव है जहां रक्त सम्बंध भी बेमानी हो जाता है। यह चरम रूप में तब सामने आता है जब चंदू सपने में सोने के सुअर की खोज में निकलता है जिसकी कहानी नानी ने उसे सुनायी थी, उस नानी ने जो उस घर में उसे प्यार करने वाली अकेली स्त्री थी, मगर निरीह थी। निरीह उसकी मां भी है, तभी चंदू की पीड़ा को महसूस करते हुए भी कातर भाव से उससे कहती है कि वहां की बातें अपने पिता को न बताये। यह साधारण भारतीय स्त्री की सम्बंध चेतना का संकेत है जो दुःख सह कर भी अपने मायके के लोगों की हेठी नहीं सह सकती है। मनोज वास्तव में टूटते बिखरते सम्बंधों को बचा लेने की चिन्ता में कहानियां लिखते हैं। विमर्शों से ज्यादा महत्वपूर्ण इनके लिए मनुष्य के बिछुड़ने की पीड़ा है और आज सम्बंधों को बचाने की चिन्ता का अर्थ है मनुष्य को बचाने की चिन्ता जो आज के विकास की दौड़ में नष्ट हो जाने की ओर बढ़ रहा है।

अपने कहानी संग्रह डर में विमलचंद्र पाण्डेय तीव्र गति से बदलते भारतीय जीवन को अपनी कहानियों का विषय बनाते हैं। अगर हम इनके बारे में यह कहें कि ये अपसंस्कृति के खिलाफ हैं तो यह एक चालू और फूहड़ बन चुका पद होगा, क्योंकि अपसंस्कृति शब्द का प्रयोग वही लोग ज्यादा करते रहे हैं जिन्होंने संस्कृति को सबसे ज्यादा विवादास्पद बनाया है। दरअसल विमल भारत के भीतर अमरीकी जीवन शैली की नकलची पीढ़ी के यथार्थ को रचने में रुचि रखते हैं जो अपनी परम्पराओं, सामूहिकता के बोध और सामाजिक चेतना से शून्य है। इस पीढ़ी के लिए अमेरिका संस्कृति, सभ्यता और जीवनशैली का आदर्श है। भूमंडलीकरण, दृश्य माध्यमों द्वारा फोर्ड फाउंडेशन के वैश्विक सांस्कृतिक अभियान से प्रभावित इस पीढ़ी के लिए भारतीय जीवन शैली, मूल्य और अवधारणाओं को एक नये शब्द से नवाजा जा रहा है — बुलशिट। पुराने उपनिवेशवाद के पुरोधे भारत को असभ्य, जंगली और जाहिल कहते थे, इस नये सांस्कृतिक उपनिवेशवाद ने भारत के लिए सम्भवतः अब तक के ज्ञात इतिहास में सबसे घिनौना शब्द गढ़ा है — बुलशिट। संग्रह की पहली कहानी ‘रंगमंच’ में कहानी का वाचक अपने खाने और चाय के पैसे बचा कर नाटक देखने आता है, मगर वहां पता चलता है कि टिकट नहीं है, सिर्फ

पास वालों को देखने की सुविधा है। वह काफी प्रयास करता है कि पास मिल जाय, मगर कोई देने के लिए तैयार नहीं होता। इसी दौरान कान में बाली पहने, लम्बे बाल वाले दो लड़के और जीन्स, टॉप, कुरते पहने फैशनेबुल लड़कियों की बातचीत वह सुनता है। उनके साथ वाला इन पर अपने कलाप्रेमी होने का प्रभाव जमाने के लिए बताता है यहां हिन्दी नाटक के प्रसिद्ध अभिनेता नसीरुद्दीन शाह का शो होने वाला है। एक लड़की पूछती है — हू इज नसीर। दूसरी टिप्पणी करती है — आई डोण्ट लाइक आर्ट सिनेमा एंड नसीरुद्दीन शाह और तीसरी इन सबसे आगे बढ़ कर भारतीय कला के बारे में अपनी हिकारत व्यक्त करती है — आई आल्सो डोण्ट लाइक दिस आर्ट सिनेमा एंड दिज बोरिंग हिन्दी प्लेज आल्सो...। कहानी के नायक को आश्चर्य होता है कि ये लोग फिर यहां आये क्यों हैं। धीरे धीरे कहानीकार स्थिति को स्पष्ट करता है कि नये धनिक वर्ग के लिए नाटक और कला आदि शाम का समय गुजारने के लिए एक आईटम भर हैं। जो लड़का लड़कियों के सामने कला के बारे में अपनी अभिरुचि को प्रदर्शित करने आया था वही सबसे भद्दी टिप्पणी नाटक के बारे में करता है — बुलशिट प्ले। इन समृद्ध और अय्याश घराने के लड़कों के लिए ऐसी जगहें लड़कियों के साथ समय गुजारने का बहाना भर होती हैं।

यहां कथ्य में एक विडम्बना उत्पन्न होती है। कहानी का नायक जो सचमुच कलाप्रेमी है और सौ रुपये खर्च करके दूसरे से पास हासिल करने में सफल हो जाता है, वह भी अपना पास दो सौ में एक अन्य आदमी को बेच देता है। मगर बाली पहनने वाले लड़के ने बुलशिट कह कर नाटक के प्रति अपनी हिकारत जाहिर की थी, उससे सौ में खरीदा गया पास दो सौ में बेचने वाला यह लड़का भिन्न है। बुलशिट कहने वाले लड़के की हिकारत के पीछे कारण उसकी गर्लफ्रेंड का न आना था, इस लड़के का पास बेचने का कारण छोले भटूरे और राजमा चावल की प्लेटों से उठ रहा धुआं है। यह फर्क आज के भूमंडलीकरण के दौर में उदित नये धनिक वर्ग की नयी पीढ़ी की सांस्कृतिक उच्छृंखलता और एक निम्न मध्यवर्गीय लड़के की भूख के बीच का फर्क है जो कला से वास्तव में प्रेम करता है, मगर भूख उसकी आदिम विवशता है।

‘स्वेटर’ कहानी देश से बाहर जा रहे लड़के के प्रति पिता के प्रेम की कहानी है। छोटे और सहज वाक्यों में पिता के भीतर कुछ छूट जाने, कुछ खाली हो जाने का दुःख मार्मिक रूप में सामने आ जाता है, जैसे— *“पापा पिछले कुछ दिनों से हर बात में घुमा फिरा कर मेलबर्न का जिक्क जरूर ले आते हैं जैसे पूरी तस्दीक कर लेना चाहते हों कि वह वाकई इतनी दूर जा रहा है।”* आज जब सम्बंध चेतना वित्तीय पूंजी के दबाव में कुंद होती जा रही है, पापा के भीतर अलगावबोध का अहसास हिला देने वाला है। पुत्र चाहता है कि पापा एयरपोर्ट न जायं, क्योंकि वहां उसकी प्रेमिका आने वाली है। उसके और उसके दोस्तों के द्वारा समझाने पर कि वे कहां बेकार परेशान होंगे, वे मान भी जाते हैं। मगर उनके भीतर क्या उमड़ घुमड़ रहा है, यह उनका पुत्र और उसके दोस्त नहीं समझ पाते। कहानी का केन्द्रबिन्दु वह स्वेटर है जो उसके पापा उसके लिए नेपाल से लाये थे। उसके पीछे जो उनकी भावनात्मकता है, पुत्र के प्रति जो ममत्व है, इसे वे नहीं समझ सकते क्योंकि इनके सामने जल्द ही पीछे छूट जाने वाले मां बाप की भावनाएं नहीं हैं, नयी और चमक दमक भरी जिन्दगी के सपने हैं। इस पूरी कहानी में जो बिछुड़ने की पीड़ा है, उसका केन्द्र स्वेटर है। दोस्तों के कहने पर नायक स्वेटर उतार कर तकिये के नीचे रख देता है ताकि बाद में पापा समझें कि गलती से छूट गया। मगर एक पिता अपने पुत्र में कितना इनवॉल्व हो सकता है इसका पता तब चलता है जब ऑटों में बैठते समय वे स्वेटर लेकर हाजिर हो जाते हैं कि यह शायद छूट गया था। नयी पीढ़ी का कद यहां एकदम बौना मालूम पड़ता है और कहानी की मार्मिकता तब चरम पर पहुंच जाती है जब पापा कहते हैं — *“कहो तो मैं भी चल ही चलूं (एयरपोर्ट)...। वैसे भी घर पर बैठा ही रहूंगा...। पापा की धीमी आवाज जैसे कहीं और न कहीं के बीच से निकल कर आ रही है। जमाने भर का दर्द और निवेदन समेटे अपनी*

आवाज को उन्होंने इस तरह जाहिर करना चाहा जैसे उन्होंने बहुत सामान्य और छोटी सी बात कही है...।” मनोज कुमार पाण्डेय ने पिता का जो अंतर्विरोधी चित्र प्रस्तुत किया है, उसकी बजाय यह बेहद सहज और मार्मिक रूप है।

‘मन्नन राय गजब आदमी है’ न सिर्फ आज के समय में पनप रही अराजक, उद्दंड और आपराधिक प्रवृत्ति वाली युवा पीढ़ी की कहानी है बल्कि इसमें बनारस के ठेठ मगर बेहद आत्मीय परिवेश का चित्रण भी लेखक ने किया है। पहलवान टाईप के आदमी मन्नन राय मुहल्ले वालों के सिरमौर इसलिए हैं कि वे हर के दुःख सुख में खड़े होते हैं और मुहल्ले में कोई अनीति बरदाश्त नहीं कर सकते। गुंडे, मवालियों के लिए वे भय का कारण हैं। लेखक ने कहानी के प्रारम्भ में जिस समय के बनारस का जिक्र किया है उसमें गुंडे मवाली भी लड़कियों को बहन बेटी मानते थे। वस्तुवर्णन में वह पुराना बनारस, जिसे उस जमाने में काशी कहा जाता था, अपनी सांस्कृतिक विशिष्टता के साथ वर्णित हुआ है। मन्नन राय का व्यक्तित्व इसमें जयशंकर प्रसाद की ‘गुंडा’ के बाबू नन्हकू सिंह से मेल खाता है। मगर अतीत की भव्यता का वर्णन करना कथाकार का मुख्य उद्देश्य नहीं है बल्कि बदलते समय की पतनोन्मुखता को दिखलाना उसका लक्ष्य है। हर आदमी के झमेले में कूद जाने वाले मन्नन राय को जब एक मामूली छोकरा तमंचा दिखा कर चुप रहने की धमकी देता है तो उनके अंदर कुछ टूट जाता है, यह नहीं कि वे डर जाते हैं। उन्हें लगता है कि समय उनकी पकड़ से आगे निकल गया है और इस सदमे से वे अचानक लापता हो जाते हैं। शहरीकरण के तीव्र विकास ने बनारस को किस प्रकार काशी के मुकाबले संवेदनशून्य और बेमुरौबत बना दिया है इसी नये यथार्थ को प्रस्तुत करना कथाकार का लक्ष्य है। यह बदलाव वह अचानक नहीं दिखलाता, छोटे छोटे ब्यौरों, रोजमर्रा के जीवन में आ रहे बदलावों और फूहड़ होती जा रही भाषा के माध्यम से दिखलाता है। इसमें दृश्य माध्यमों की भूमिका निर्विवाद रूप से है।

‘चश्मे’ शीर्षक कहानी पिता पुत्र के रिश्ते के आदिम राग की कहानी है। पुत्र के प्रति पिता का आक्रोश समय के साथ इस प्रकार बदलता है कि पिता पहले वाले पिता ही नहीं रह जाते। मनोज की कहानियों में पिता का जो चित्र है, उसके बजाय विमल की कहानी ‘चश्मे’ के पिता थके और अवसादग्रस्त, टूटे और बिखरे मालूम पड़ते हैं। ये दो तरह के चित्र आज की युवा पीढ़ी के कहानीकारों के अनुभव की विविधता को दिखलाते हैं।

संग्रह की प्रतिनिधि कहानी ‘डर’ है। इसमें जो लड़की है वह चूहों, तिलचट्टों, मकड़ों और भूतों से डरती है। एक बार उसने अजगर की तस्वीर देखी तो सहम गयी। उसने यह भी सुना था कि कब्रिस्तान में हाजी बाबा रात को अपनी कब्र से निकल कर घूमा करता है। लड़की हाजी बाबा से भी डरती थी। मगर एक अंधेरी रात में जब उसे बीमार पिता के लिए डॉक्टर बुलाने जाना पड़ता है तो लौटते समय बारिश से बचने के लिए वह टीन के शेड वाले घर में चली गयी जहां एक आदमी शराब पी रहा था। यह वास्तविक अजगर से भेंट थी। उस आदमी ने उसकी इज्जत लूटने की कोशिश की और लड़की भागी। भाग कर वह उसी कब्रिस्तान में चली गयी जो उसके डर में शामिल था और अंततः वह हाजी बाबा की विराट कब्र और उसके पास के विशाल पेड़ के पीछे छिप गयी जिससे वह सबसे ज्यादा डरती थी। आदमी उस कब्र और पेड़ को देख कर इतना भयभीत हो गया कि उसे छोड़ कर भाग गया। इस प्रकार प्रतीकों और मानसिक उहापोह के वर्णन के द्वारा विमल स्त्री विमर्श का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करते हैं।

‘सोमनाथ का टाइम टेबुल’ व्यापक कैनवस की कहानी है। इसमें दलित विमर्श, स्त्री विमर्श और हिन्दुत्व के नाम पर चल रही माफियागिरी को विमल ने मूर्त रूप दिया है। कहानी का नायक एक किशोर है जो अपने पिता और भाई की दृष्टि में नकारा एवं आवारा है। उसके पड़ोस में एक परिवार रहने आता है जिसमें सलोनी नाम की लड़की है। दोनों के बीच में आकर्षण पैदा होता है और यहीं

कहानी में दलित विमर्श और हिन्दुत्ववादी राजनीति शुरू होती है। लड़के, यानी सोमनाथ का भाई और उसके गुंडानुमा दोस्त गणेशी की नजर उस लड़की पर एवं उसकी जमीन पर है। गणेशी एक दिन उसे अकेली पाकर बदतमीजी करता है, फिर सोमनाथ का भाई एक साजिश करता है और उस जमीन पर बाबा विश्वनाथ की मूर्ति निकल आती है। अंततः वह परिवार मुहल्ला छोड़ कर चला जाता है। सोमनाथ के दिमाग पर इसका गहरा असर पड़ता है और वह अपने ढंग से आक्रोश भी व्यक्त करता है।

‘सफर’, ‘उसके बादल’ बहुत ही भावुकतापूर्ण प्रेम कहानियाँ हैं। ‘सिगरेट’ शीर्षक कहानी दो बूढ़ों की खास तरह की कहानी है। लेखक ने जीवन की अपूर्णता और बुढ़ापे में दोस्त के छूट जाने की पीड़ा का इसमें वर्णन किया है। ‘वह जो नहीं है’ महानगरों में सफेदपोशों के बीच की गलाजत को व्यक्त करने वाली कहानी है। इस प्रकार विमल के इस संग्रह में आज के जीवन की अनेक वास्तविकताओं को दिखलाने वाली कहानियाँ हैं। अंतिम दो सशक्त कहानियाँ नये मीडिया और धर्म के नाम पर चलने वाले धंधे से सम्बंधित हैं। इन कहानियों के सम्बंध में एक जरूरी बात यह है कि सारी गलाजतों के बावजूद लेखक जीवन में सम्भावनाएं देखता है। ‘एक शून्य शाश्वत’ संग्रह की बहुत ही सशक्त कहानी है। यह कहानी नयी पूंजी, धर्म के धंधावादी गठजोड़ के मौजूदा दौर के दांवपेंचों को सामने लाती है। आज के भूमंडलीकरण का दौर चिटफंडी पूंजी, धर्म और मीडिया द्वारा रचित आभासी यथार्थ का दौर है। कहानी में तीन दोस्त हैं और एक लड़की भी उनके साथ जुड़ती है। ये सब अपनी जिन्दगी को बेहतर बनाने के लिए संघर्षरत हैं। इस संघर्ष का कोई नतीजा नहीं दिखलाई पड़ता तो अंततः ये लोग योग सिखाने का पेशा शुरू करने की योजना बनाते हैं। यहां यह मालूम पड़ता है कि आज के दौर में परम्परा और अतीत की विरासतों को किस प्रकार धंधे में बदला जा रहा है। योग और ध्यान पुराने समय में मनुष्य के शारीरिक, मानसिक विकास और चरित्रगत दृढ़ता के निर्माण के लिए था। आज के दौर में इसे अन्य उपभोक्ता वस्तुओं के दायरे में ला दिया गया है। यह गौर करने की बात है कि योग शिविर में किस वर्ग के लोग जाते हैं। ये वे लोग हैं जो बाजार और उदारवाद के दौर में रातोंरात अमीर बन बैठे हैं और ये खाये पिये, अघाये हुए लोग अपना मोटापा कम कराने या मर्दाना शक्ति बढ़ाने के लिए इस योग शिविर में आते हैं। आज भारत को विश्व का आध्यात्मिक गुरु बनाने का नारा दिया जा रहा है और इसका जिम्मा बड़े उद्योगपतियों, पूंजीपतियों ने उठा लिया है। आज मॉल और डिपार्टमेंटल स्टोर में पूजा के किट मिलते हैं। इसी नये समकालीन यथार्थ को इस कहानी में चित्रित किया गया है। शाश्वत शाश्वताचार्य बन कर पार्कों में योग शिविर चलाता है और इस पूरी टीम का सम्पर्क योग बाबाओं, प्रवचन का धंधा करने वालों से होता है। एक साथी सुनील प्रवचन करने की तैयारी करता है। मगर इसी समय कहानी में एक मोड़ आता है। शाश्वत एक गंदी बस्ती में जाता है और वहां जो गरीबी, जहालत और रोग देखता है, उसका मन बदलने लगता है। जीवन की वास्तविकता से साक्षात्कार होने पर उसका संवेदनशील मन विचलित हो जाता है और वह अवसादग्रस्त होकर अंततः बनारस लौट आता है। उसको बदलने वाला वह बीमार बच्चा है जो बस्ती में उसे मिला था। उसके साथी उससे किनारा कर लेते हैं। इसी प्रकार आज के धंधावादी समय को संकलन की अंतिम कहानी व्यक्त करती है। यह मीडिया के क्षेत्र में फैली अव्यवस्था और छद्म को उजागर करती है।

दोनों संग्रह की कहानियाँ आज के यथार्थ को ही अभिव्यक्त नहीं करतीं बल्कि परम्परा, इतिहासबोध और सम्बंध चेतना के बिखराव के कारण बन रहे वातावरण में मनुष्य की संवेदना और गरिमा की तलाश की बेचैनी से भरी हुई हैं। इनकी भाषा में आज के नये समय के भाषिक प्रयोग की झलकियाँ तो मिलती ही हैं, खास बात यह है कि शब्दों में अर्थ की बहुस्तरीयता झलकती है।

शहलूत : मनोज कुमार पाण्डेय, प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, मूल्य : 120.00 रु.

डर : विमलचंद पाण्डेय, प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, मूल्य : 130.00 रु.

## मत

तद्भव का उन्नीसवां अंक मिला। दो दिन में पूरा पढ़ गया। यह चमत्कार की तरह है कि पत्रिका उत्तरोत्तर अपना स्तर, अपनी ग्राह्यता, अपनी व्याप्ति बढ़ाती जा रही है। हर अंक पिछले से बस। ऐसे में किस रचना का उल्लेख करें और किसे छोड़ें। सारी सामग्री उल्लेखनीय है। चाहे डॉ. चौथीराम यादव का लेख हो या डॉ. तुलसीराम की आत्मकथा का अंश। राजू शर्मा की लम्बी कहानी हो या राजेश जोशी का वृत्तांत। दूधनाथ सिंह की कलम से हमेशा ही विशिष्ट रचना निकलती रही है। सुधा आरोड़ा ने दर्द के सागर में डुबो दिया।

‘लाल बहादुर का इंजन’ कहानी में व्यक्त दर्द को अभिव्यक्त करना आसान नहीं है।

साम्प्रदायिकता किस प्रकार मुद्दत से जुड़े दिलों के बीच दरार पैदा कर रही है, इसे मो. आरिफ ने अपनी लम्बी कहानी ‘चोर सिपाही’ के माध्यम से बहुत ही प्रामाणिकता और कौशल के साथ प्रस्तुत किया है। मो. आरिफ निरंतर ऊंचाई प्राप्त करने वाले चंद लेखकों में से एक हैं। तद्भव के निरंतर उत्कर्ष की कामना के साथ। शिवमूर्ति, नोएडा, उ.प्र.

तद्भव-19 की विशेष उपलब्धि है राजू शर्मा की कहानी — ‘कहानीकार’। कहानी लेखन का इतना नया, इतना संवदेनशील रूप कम ही देखने को मिलता है। राजू शर्मा सिद्धहस्त लेखक हैं, यह इस लम्बी कहानी से प्रमाणित होता है। आपने पहले भी उनकी एक अद्भुत लम्बी कहानी ‘नोटिस’ प्रकाशित की थी। वे शीर्षक छोटे रखते हैं किन्तु कहानियां बड़ी और बेमिसाल लिखते हैं। उन्हें मेरी हार्दिक बधाई।

डॉ. तुलसीराम की आत्मकथा और राजेश जोशी के वृत्तांत को हिन्दी गद्य लेखन में लम्बे समय तक याद किया जायेगा।

केदारनाथ सिंह की लम्बी कविता ‘मंच और मचान’ और नरेश सक्सेना, श्रीप्रकाश शुक्ल, हरे प्रकाश उपाध्याय, मनोज कुमार झा की कविताएं सच को विस्तार से रचती हैं। इन्हें इनके प्रतिरोधात्मक स्वर के कारण भी याद किया जायेगा।

कृष्ण कुमार, दूधनाथ सिंह, चौथीराम यादव और राजकुमार के गम्भीर लेखों के महत्व को रेखांकित करना चाहूंगा। ऐसे लेख तद्भव की व्याप्ति को बढ़ाते हैं। आप इसी निष्ठा से अपना दायित्व पूरा करते रहिए। शेखर महाजन, जोधपुर, राज.

मैं भी तद्भव का पाठक हूँ। दुर्भाग्यवश इच्छा के बावजूद सारे अंक पढ़ नहीं पाता लेकिन आज समस्तीपुर के सर्वोदय बुक स्टाल पर खड़े खड़े पत्रिका के पन्ने पलट रहा था कि अचानक लेखकों के परिचय के पृष्ठ पर अपने जिले के लेखक मो. आरिफ का नाम, पता देख कर मुझे बड़ा आश्चर्य लगा। सच कहूँ भोजन न कर पत्रिका खरीद ली। ट्रेन में ही उनकी कहानी ‘चोर सिपाही’ पढ़ डाली। कहानी पढ़ने के दरम्यान आंखों में दो बार पानी भी आया।

हालांकि कहानी मैंने अपने जिले के लेखक को पढ़ने के उद्देश्य से ही शुरू की थी लेकिन ज्यों ही अपना पांव कहानी रूपी सरिता में रखा तो धीरे धीरे वह सरिता अपने में बहाते हुए कहानी के महासमुद्र में ले गयी जहां न भौगोलिक सीमाएं थीं न खोजने से कोई अपना मिलता। आग में जला अहमदाबाद राख का ढेर मालूम पड़ा। जहां गांधी की स्मृतियां गोड्से के भय से दुबकती हुई भागती दिखायी पड़ीं। फिर अचानक प्यार का दीपक जलता दिखायी पड़ा। शम्भु शरण यादव, समस्तीपुर, बिहार

सम्पादकीय में आपने बहुत ही महत्वपूर्ण विषय उठाया है। पूरे संसार में सरकारें गवर्नेन्स के नाम पर नागरिकों के नितांत निजी स्पेस में घुसपैठ करके उन्हें आतंकित कर रही हैं। कागजों की बेड़ियों में नागरिकों को जकड़ रही हैं। जनतंत्र की नींटकी में सरकार राजा है और प्रजा उसकी गुलाम जिसे अनर्गल, अवांछित नियमों, कानूनों और कागजों की भूलभुलइया में भटकाने रखना राजा का धर्म है। इस विषय पर समाज में विस्तार से बहस होनी चाहिए। प्रताप सिंह राठौर, अहमदाबाद, गुज.

हमेशा की तरह यह अंक भी बहुत सुंदर और पठनीय है। विशेषकर गिरिराज की कविताएं, राजेश की गप्पें और राजू शर्मा की कहानी बहुत अच्छी लगीं। कृष्ण कुमार का लेख भी। मदन सोनी, भोपाल, म.प्र.

कल ही तद्भव मिला। रात में पढ़ गया। कृष्ण कुमार जी और दूधनाथ जी के लेख बहुत अच्छे हैं। हरे

प्रकाश की कविता भयानक दुःस्वप्न की तरह लगती है। इस कविता ने मुझे बहुत प्रभावित किया। कहानियों के बारे में आप खुद ही टिप्पणी कर देते हैं, इसलिए उनके बारे में कुछ नहीं कहूंगा। कवर भी कई अंकों बाद बहुत अच्छा लगा। इतने अच्छे अंक की बधाई। प्रभात रंजन, दिल्ली

अंक हर बार की तरह बहुत अच्छा आया है। सम्पादकीय अच्छा लगा। केदार जी की 'मंच और मचान' कविता अंक की उपलब्धि है। कुमार अनुपम, नयी दिल्ली

तद्भव-19 वजनी है, क्योंकि इसमें नरेश सक्सेना जी की कविता है — 'गिरना'। अंक वजनी है क्योंकि इसमें मो. आरिफ की कहानी है — 'चोर सिपाही'। अंक वजनी है क्योंकि इसमें मनुष्य की मौलिक निजता पर सम्पादकीय की घनी चिन्ता है और सम्पादक का कथन — 'विभेद बढ़ रहा है विविधता नष्ट होती जा रही है' तमाम तरह के दुष्प्रक्रों की ओर इशारा करता है।

जिस तरह धूमिल लिख गये कि 'कविता भाषा में आदमी होने की तमीज है', उसी तरह कहा जा सकता है कि नरेश सक्सेना जी की कविता — 'गिरना' पढ़ कर आदमी होने की तमीज हो सकती है। 'गिरो आंसू की एक बूंद की तरह/किसी के दुख में गेंद की तरह गिरो/खेलते बच्चों के बीच...' बार बार पढ़ने पर भी फिर फिर पढ़ने का मन करे, ऐसी कविता है। मैंने इस कविता को नरेश जी की अनुमति से अपने ब्लाग पर लिखा है।

मो. आरिफ की कहानी के बारे में क्या कहूं, झर झर आंसू बहें कहानी पढ़ कर, इतनी सहज भाषा में विडम्बना की तेज धार कहन की पूरी निपुणता के साथ — हंसते हंसाते रुला गयी कहानी। भाई आरिफ को मेरा मुबारकबाद।

कविवर राजेश जोशी जी का वृत्तांत डूब कर पढ़ने को विवश करता है। राजकुमार का 'प्रेमचंद और राष्ट्रवाद' बड़े परिश्रम के साथ प्रेमचंद का पुनर्पाठ करता है और प्रेमचंद की प्रासंगिकता को निरंतर मजबूत करता है। सुशीला पुरी, लखनऊ, उ.प्र.

तद्भव-19 भी अन्य अंकों की भांति काफी रोचक और सराहनीय है। इसमें पढ़ने (और उससे भी ज्यादा समझने और गुनने) के लिए काफी सामग्री है। आपका सम्पादकीय, राजू शर्मा की लम्बी कहानी 'कहानीकार', केदारनाथ सिंह की लम्बी कविता 'मंच और मचान' और राजेश जोशी का वृत्तांत 'दूसरा शहर और किस्सों की दूसरी किस्त' उल्लेखनीय है।

किन्तु विशेष रूप से उल्लेखनीय है चौथीराम यादव का लेख 'अवतारवाद का समाजशास्त्र और लोकधर्म'। मेरी समझ से सच्चा आलोचक वही है जो बने बनाये ढांचों और सांचों को तोड़ दे, जो पाठकों के मन में एक बेचेनी सी पैदा करे दे, जो उन्हें एक नये सिरे से सोचने को मजबूर कर दे, जो उनके सामने नये प्रश्न खड़े कर दे, जो उन्हें एक नयी अंतर्दृष्टि दे। चौथीराम यादव अपने लेख के माध्यम से वह सब करते हैं जो एक सच्चे आलोचक (और बुद्धिजीवी) का धर्म और कर्म है। यादव जी ने समाजशास्त्रीय या यूँ कहें कि नवइतिहासवादी दृष्टिकोण से भक्ति साहित्य का पुनर्पाठ करते हुए यह दर्शाया है कि अवतारवाद की अवधारणा का वर्चस्ववादी वर्णवादी शक्तियों द्वारा प्रतिरोधी वर्णविरोधी शक्तियों को दमित और पराजित करने के लिए किस तरह से एक हथियार के रूप में इस्तेमाल किया गया है। इस क्रम में उन्होंने सिर्फ तुलसीदास द्वारा रामचरितमानस में वर्चस्ववादी, वर्णवादी और प्रतिरोधी सम. तामूलक शक्तियों के बीच स्थापित किये गये मिथ्या सामंजस्य के सच को ही नहीं उजागर किया है, बल्कि आचार्य रामचंद्र शुक्ल जैसे आलोचकों द्वारा की गयी इस मिथ्या सामंजस्य पर आधारित आलोचना के प्रतिमानों को निर्धारित करने के पीछे उनकी वर्णवादी मानसिकता को भी उजागर किया है।

कृष्ण कुमार का लेख 'लड़की की पुनर्रचना' भी अच्छा है तर्क और विश्लेषण की दृष्टि से, पर विचारों के स्तर पर वह हमें किञ्चित निराश करता है। लेख के अंत में पाठकों के मन में हठात् यह प्रश्न उठता है कि सीता की अग्निपरीक्षा के विषय विश्लेषण का औचित्य क्या सिर्फ यही दिखलाना है कि लड़की/नारी परिवार और समाज द्वारा गढ़ी जाती है।

सबसे ज्यादा निराश करता है राजकुमार का लेख 'प्रेमचंद और राष्ट्रवाद'। आपने राजकुमार का जिस तरह से आक्रांत और आतंकित करने वाला परिचय दिया है, उससे सचमुच ही उनके प्रति एक जिज्ञासा पैदा होती है, निहायत ही निजी स्तर पर न कि बौद्धिक स्तर पर। संजय कुमार, वाराणसी, उ.प्र.

हमेशा की तरह इस बार भी, आपका सम्पादकीय काबिलेगौर और बहसतलब है। चीजों को देखने का

एक खास नजरिया आपकी सोच और समझ को 'एक निश्चित दृष्टिकोण' (पाश के शब्दों में) का ताप और तपिश देता है। और शायद इसीलिए, आपके सम्पादकीय के एक एक वाक्य में 'वक्तृत्व' का विरल आवेग है, यहां आपको विचारों का एक पारदर्शी खरापन हम पाठकों के 'संवदेनात्मक ज्ञान' (...!) को छूकर, मांजता है। अस्तु।

अपने वरिष्ठ कवि केदारनाथ सिंह जी की 'मंच और मचान' कविता के क्या कहने! शब्द नहीं हैं मेरे पास... जो इस बेमिसाल कविता के लिए कुछ कहूं! वरिष्ठ कवि नरेश सक्सेना की 'गिरना' कविता और युवा कवि मनोज कुमार झा की 'इस कथा में मुल्यु' कविता 'तद्भव' के लिए एक खास उपलब्धि है।

नरेश सक्सेना जी की 'गिरना' कविता, उन तमाम नादीदा चीजों को आहिस्ता आहिस्ता उठाती है जिनके बारे में कुंवर नारायण जी कहते हैं, 'एक जीवनदृष्टि/कि उसमें विनम्र अभिलाषाएं हों/बर्बर महत्वाकांक्षाएं नहीं/वाणी में कवित्व हो/कर्कश तर्क वितर्क का घमासान नहीं...।' 'गिरना' कविता में ऐसी ही एक पृथुल जीवनदृष्टि है और कुछ विनम्र अभिलाषाएं हैं, जो इस बर्बर समय की अंधी महत्वाकांक्षाओं का विरोध करती हुई अपने भीतर झरती रोशनी में 'गिरने की बात' उठाती हैं — 'अपने गिरने की सही वजह और वक्त' बताती हुई!

...और यह 'गिरना', दरअसल एक सम्पूर्ण मनुष्य का उठना है — नदी से उठते संगीत और बीज से उठते हरेपन की तरह!

युवा कवि मनोज कुमार झा के पास बड़ी अद्भुत और विलक्षण भाषा है — गंवाई गंध में घुली मिली, जनपदीय राग में रची बसी और यह कहना गलत न होगा कि मनोज कुमार झा हिन्दी कविता के समकालीन मिजाज और मुहावरे को समझते हुए (प्रफुल्ल कोलख्यान के शब्दों में) उसमें बहुत कुछ ऐसा भी जोड़ते हैं, जो हिन्दी कविता को भिन्न संवदेना से समृद्ध करता है। तो वहीं इस मायावी समय में मायावी अंधेरे और अंधता के खिलाफ एक सजग मनोभाव (जिसे मुक्तिबोध 'जातीय ऊंचाइयों की तलाश' कहते हैं!) विकसित करने वाली वसंत त्रिपाठी की कविताएं सभ्यता के हाशिये पर फेंक दी गयी जिन्दगी को सहेजती संवारती हुई हमारी संवदेना का अनिवार्य हिस्सा बनाती हैं...।

हरे प्रकाश उपाध्याय अपनी पुष्ट सम्भावनाओं के साथ मौजूद हैं। उनकी 'दफ्तर' कविता को पढ़ने के बाद यह धारणा पक्की होने लगती है कि अच्छे विषयों पर अच्छी कविता लिखना जितना कठिन है, उससे अधिक कठिन है सामान्य से दिखने वाले विषय को कविता में उतार देना।

श्रीप्रकाश शुक्ल की कविता पढ़ कर, पाठक की चेतना को एक स्तर पर काव्यास्वाद तो प्राप्त होता ही है, सामाजिक राजनैतिक बोध भी जागृत होता है।

गिरिराज किराडू और यू.के.एस. चौहान की कविताएं भी एक विशिष्ट अंदाजेबयां लिए, हमारे मन को छूती हैं... मथती हैं।

'विशेष' में दूधनाथ सिंह जी ने दूध का दूध, पानी का पानी कर दिया है! अपने इस खोजपरक आलेख (आलेख नहीं दस्तावेज कहना ज्यादा सही और सार्थक लगता है) के साक्ष्य को जुटाने और सिलसिलेवार लिखने और हिन्दी समाज की काहिल आंखों पर बंधी काली पट्टी को खोलने में, उन्हें कितनी मेहनत, कितनी दिक्कत, कितनी परेशानी, कितनी मुश्किलों का सामना करना पड़ा होगा — हम समझ सकते हैं और इस बात को महसूस भी कर रहे हैं!

राजू शर्मा लम्बी कहानी लिखने में माहिर हैं... एक्सपर्ट हैं और जिस अंदाजोफन में वे कहानी रचते हैं उस अंदाजोफन पर चचा गालिब का एक नामावर शोर याद आता है : 'बकद्रे शौक नहीं जर्फ तंगना ए गजब/कुछ और चाहिए वुसअत मेरे बयां के लिए'। बहरहाल इतना ही। राहुल झा, मुंगेर, बिहार

'तद्भव-19' प्राप्त हुआ। इस पत्रिका की प्रतीक्षा बनी रहती है। इस अंक में भी सामग्री स्तरानुकूल है। 'अवतारवाद का समाजशास्त्र और लोकधर्म' — डॉ. चौथीराम यादव तथा 'प्रेमचंद और राष्ट्रवाद' — राजकुमार गहन अध्ययन के साथ लेखकों की सोच और निष्पक्ष तार्किक दृष्टि के परिचायक हैं। ऐसे लेखों से तैयार की गयी समझ से अपने आपको स्वतंत्र करने की प्रेरणा मिलती है। भगवान सिंह का लेख 'अनुसंधाता नहीं, व्याख्याता' हिन्दी के प्रत्येक लेखक को पढ़ना चाहिए। भगवान सिंह ने अपने परिश्रम का लोहा कई वर्षों से मनवा रखा है। कहानियां और कविताएं अपनी जगह हैं। मुर्दीहिया का चौथा खंड अगले विकास का प्रमाण लगता है। तद्भव संवेदनशील, बौद्धिकता की ओर अग्रसर और समाजदृष्टि के पाठक के लिए अनिवार्य पत्रिका का रूप ले चुकी है। हरपाल सिंह 'अरुण', मुजफ्फरपुर, बिहार

तद्भव-19 के लिए भी आपको बधाई। दूधनाथ सिंह, कृष्ण कुमार और राजकुमार के लेख महत्वपूर्ण हैं। डॉ. तुलसीराम और राजेश जोशी इस बार भी पूरी शक्ति के साथ उपस्थित हैं। राजू शर्मा की लम्बी कहानी

‘कहानीकार’ के लिए भी इस अंक को याद रखा जायेगा। भगवान सिंह का विश्लेषण विचारोत्तेजक है। सुधीर पाल, विवाल, देहरादून, उत्तराखंड

‘तद्भव’ के अंक काफी अच्छे निकल रहे हैं। सम्पादकीय से लेकर एक एक रचना महत्व की होती है। ‘विभेद बढ़ रहा है, विविधता नष्ट होती जा रही है’ — 19वें अंक में व्यक्त आपका निष्कर्ष सही है। जितना पढ़ पाया हूँ, उनमें केदारनाथ सिंह, कृष्ण कुमार, भगवान सिंह, दूधनाथ सिंह, नरेश सक्सेना, श्रीप्रकाश शुक्ल, हरे प्रकाश उपाध्याय, वसंत त्रिपाठी, यू.के.एस चौहान, मनोज कुमार झा, सुधा अरोड़ा, डॉ. तुलसीराम और राजेश जोशी की रचनाएं विशेष आकर्षक हैं। शम्भु बादल, हजारीबाग, झारखंड

शाताब्दी वर्ष में स्मरण के बहाने भगवत शरण उपाध्याय पर भगवान सिंह का लेख सबसे पहले पढ़ा। भगवान सिंह मेरे प्रिय लेखकों में हैं। पत्रिकाओं और पुस्तक रूप में प्रकाशित होने पर उनका लिखा पढ़ना मुझे हमेशा प्रिय रहा है। लेकिन भगवत शरण उपाध्याय पर लिखित उनका यह आलेख मुझे अपने अधूरेपन के कारण निराश करता है। भगवत शरण जी से मेरा मिलना भी हुआ था और उनसे पत्राचार भी था। वेशक वे कुछ हठी और अंहकारी किस्म के व्यक्ति थे। मेरी उनसे पत्राचार की शुरुआत ही एक तरह से विरोध से हुई थी — यशपाल की ‘दिव्या’ पर उनके कुख्यात लेख को लेकर। हिन्दी में ऐतिहासिक पृष्ठभूमि वाली रचनाओं में वे कदाचित सिर्फ ‘बाणभट्ट की आत्मकथा’ पर अपना संतोष व्यक्त करते हैं। यशपाल, राहुल, रांगेय राघव आदि सबसे उन्होंने पंगा लिया। लेकिन यह उनका एक पक्ष है। राहुल और रांगेय राघव की क्रमशः ‘वोल्गा से गंगा’ और ‘महापात्र’ से भी पहले उन्होंने ‘सबेरा संघर्ष गजन’ की कहानियां लिखीं। गुप्तकाल उनका मुख्य क्षेत्र था। ‘कालिदास का भारत’ (India in Kalidas), ‘गुप्तकाल का सांस्कृतिक इतिहास’ के अतिरिक्त उन्होंने ‘कालिदास’ नामक उपन्यास भी लिखा। प्राचीन इतिहास से सम्बंधित उनकी कई विवादास्पद स्थापनाओं को लेकर उनका और सब कुछ विस्मृत कर देना — मुझे भगवान सिंह की ज्यादाती लगती है। इतिहास ग्रंथों में उनके अनुल्लेख का सीधा सादा कारण यह है कि उनका अधिकतर काम हिन्दी में है जबकि इतिहास लेखन अंग्रेजी में ही स्वीकार्य रहा है। रामविलास शर्मा के इतिहास लेखन को कहां स्वीकार्यता मिली? और राहुल? जो भी है, आप हर ओर ध्यान दे रहे हैं, यह अच्छी बात है। कमी डॉ. मोती चंद्र पर भी कुछ सामग्री दें। मधुरेश, बरेली, उ.प्र.

‘तद्भव-19’ का सम्पादकीय सिर्फ सम्पादकीय नहीं एक उत्कृष्ट ललित निबंध है। विचार और भाषा दोनों दृष्टियों से। कृष्ण कुमार जी का आलेख ‘लड़की की पुनर्रचना’ एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है — आखिरी परिच्छेद में आलेख का पूरा सार आ गया है। दूधनाथ सिंह का लेख ‘घर रहेंगे’ ज्ञानवर्धक है।

वीरेन्द्र यादव गये तीन चार अंकों में नजर नहीं आये। वीरेन्द्र यादव, मैनेजर पाण्डेय, दूधनाथ सिंह, विश्वनाथ त्रिपाठी, इन सबका लेखन पाठकों का ज्ञान बढ़ाता है। शांतिराम मंजुरे, मुम्बई, महा.

निस्संदेह ‘तद्भव’ की जान ‘कहानियां’ होती हैं। विशेषतः ‘तद्भव’ की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि ‘चोर सिपाही’ पर टिप्पणी करना चाहूंगा। मैंने दंगों पर आधारित कई कहानियां पढ़ी हैं लेकिन यह कहानी इस पृष्ठभूमि के अनछुए कोनों की पड़ताल करती है। ‘जैसेकि एक मीठा जहर धमनियों में घुलता जा रहा हो’ — इस कहानी की विशेष अनुभूति है। बेहद संयत एवं शांत भाव भंगिमाओं में लिखी गयी इस कहानी में ज्वालामुखीय विस्फोट है। इस कहानी का मूल स्वर तो दंगों के बीच एक किशोरवय प्रेम कहानी है — असफल प्रेम कहानी — जो पाठक के अंदर एक टीस उत्पन्न करती है। मेरा अध्ययन अत्यंत सीमित है और अभी तक मेरी पढ़ी गयी कहानियों में मैंने अधिकांशतः हिन्दू परिवार की व्याकुलता को पढ़ा है। इस कहानी के माध्यम से मुस्लिम परिवार के डर, असुरक्षा, व्याकुलता आदि का भाव बड़े ही सजीव ढंग से चित्रित किया गया है। सबसे बड़ी बात जो सम्भव है यह कि दो धर्मों के लंगोटिया यारों का विश्वास और प्रेम दंगों में किस प्रकार विघटित होता है, इसका चित्रण बड़े ही संवेदनशील ढंग से उकेरा गया है। मो. आरिफ को ढेर सारी बधाइयां! इसके अलावा राकेश मिश्र की विडम्बनापूर्ण कहानी है। गौरव सोलंकी को पढ़ कर पता नहीं क्यों विनोद कुमार शुक्ल की याद आ गयी। पंकज, वाराणसी, उ.प्र.

तद्भव अंक 19 में भगवान सिंह, चौधरीराम यादव, दूधनाथ सिंह और राजकुमार के लेख बहुत महत्वपूर्ण लगे। शोधधर्मी आलोचना के क्षेत्र में दूधनाथ सिंह युवा पीढ़ी के सामने एक मानक भी हैं, चुनौती भी, नरेश सक्सेना की कविता ‘गिरना’ बहुत पसंद आयी। हर छंद गठा हुआ। अर्थ में महाकाव्यात्मक विस्तार